क्रान्ति- प्रतिक्रान्ति और प्रभाव

विचारधारा ही परिवर्तन की दिशा निर्धारित करती है और सतनाम अपने आप में एक क्रान्तिकारी शब्द है। जहॉ जहॉ सतनाम का पदार्पण हुआ, वहॉ वहॉ क्रान्ति का बिगुल बजा है। सतनाम में वह शक्ति है जो धरती पर रहते हुए परलोक की सपना देखने वालों को जमीन की सच्चाई पर खींच लाती है। इस लोक में रहते हुए सत्य मार्ग पर चलना अपने आप में एक चमत्कार है जो शोषण, अन्याय, अत्याचार, रूढ़ीवादी, अन्धविश्वास के बदले लौकिकता एवं व्यवहारिकता पर आधारित मानवतावादी समतामूलक पथ है। यही लौकिक एवं व्यवहारिक सत्य है। इसके लिए अलग से चमत्कारी होना कोई आवश्यक नहीं है। सतनाम एक जीवन शैली है। मानवता पथ में चलते हुए जीवन को उन्नत व प्रगतिशील बनाना ही वास्तविक सतनाम है, जो मानवीय चेतना के स्तर को दर्शाता है।

वास्तव में अलौकिक अथवा चमत्कारिक शक्ति की कल्पना केवल अन्धों का दौड़ है, जहॉ से आगे कोई रास्ता ही नहीं सूझता। केवल भटकनें ही भटकने नजर आती है। वहीं क्रान्तिकारी विचारधारा में वो शक्ति होती है कि उसके सम्पर्क में आने वाला हर व्यक्ति, अपने संकीर्ण पथ के बदले मानवता पथ पर अपने आप चलने लगता है। वास्तव में सतनाम आन्दोलन जनतंत्रवादी और राष्ट्रवादी जरूर रहा है लेकिन सुधारवाद नहीं बल्कि अकसर परिवर्तनवादी रहा है। *जब जब क्रान्ति का बिगुल बजता है सुधारवादी ताकते सामने आकर हमेशा क्रान्तिपथ को रोकने अथवा मोड़ने की कोशिस करती है। ये सुधारवादी ताकते हमेशा शोषक वर्ग से होता है।* क्रान्ति का अर्थ ही आमूल परिवर्तन होता है जो हमेशा शोषितों द्वारा शोषकों के विरूद्ध एक समुचित संघर्ष होता है। इसमें शोषकों को समूल नष्ट होने का खतरा बना रहता है। अतः शोषकों द्वारा भयवश प्रतिक्रान्ति का दौर शुरू होता है ताकि क्रातिपथ को किसी तरह मोड़ा जा सके। किसी भी क्रान्ति के प्रभाव को, उसके प्रतिक्रान्ति के स्वरूप से समझा जा सकता है। ब्राह्मणवादी व्यवस्था एक ऐसी विचारधारा है जो क्रान्ति के प्रतिक्रिया स्वरूप प्रतिक्रान्ति है, केवल शोषकों के हित में कार्य करता है।

ः ब्राह्मणवादी व्यवस्था क्या है ः

डा. अम्बेडकर के अनुसार इस देश में सीढ़ी की तरह खड़ी समाज व्यवस्था है । वर्ण और जाति इसके दो प्रमुख आधार है। वर्ण का अर्थ रंग होता है। वर्ण भेद वास्तव में रंग भेद को दर्शाता है। जैसे गौर वर्ण अर्थात गोरी चमड़ी का रंग, श्याम वर्ण अर्थात काली, गेंहुआ या ताम्र लाल चमड़ी का रंग होता है। ऋग्वेद के अनुसार यही वर्ण आर्यो और अनार्यो में भेद स्पष्ट करता है। आर्यो ने तीन वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बनाया, जिन्हे ये द्विज या सवर्ण कहते है। इनमें भी आपस में अलग अलग यज्ञोपवीत धारण का तरीका निर्धारित है। ऋग्वेद के अनुसार सवर्णो में अनार्यो को शामिल नहीं किया गया है तथा प्रारंभ में केवल तीन वर्ण ही था। चौथा वर्ण का समावेश पुरूष सूक्त के रूप में बाद में ऋग्वेद के दसवें मण्डल में जोड़ा गया।

डा. अम्बेडकर के अनुसार प्रारंभिक अवस्था में वर्ण भेद नही था। तब वर्ण एक उपाधि था। गुरूकुल प्रथा में आचार्य के द्वारा योग्यता के अनुसार इन्हें उपाधि दी जाती थी। जिसे वर्ण कहते थे। इस उपाधि देने की प्रथा को उपनयन संस्कार कहा जाता था। इसका संचालन गुरूकुल द्वारा होता था। निश्चित अवधि के बाद प्रवीणता के लिए बीच में परीक्षा ली जाती थी। जिसमें प्रवीणता के आधार पर ब्राह्मण कभी शूद्र हो जाता था और शूद्र कभी ब्राह्मण बन जाता था। ये उपाधियॉ शुद्ध योग्यता द्वारा निर्धारित होती थी। इसमे कई परिवर्तन हुए और समयोपरांत स्वार्थी तत्वों द्वारा वर्ण का मूल आधार योग्यता के बदले, जन्म घोषित कर दिया। ब्राह्मणों ने उपनयन संस्कार का अधिकार, गुरूकुल के बदले पिता को दे दिया। वर्ण का आधार गुरूकुल की योग्यता के बदले जन्म से निर्धारित होने लगा। ब्राह्मणों ने उपनयन संस्कार अपने घर में शुरू कर दिये। इस तरह योग्यता में स्वार्थ घुसकर **ब्राह्मणवाद** पनपने लगा। ढाई हजार साल पहले महामानव बुद्ध को ज्ञान प्राप्ति के बाद जब वास्तविकता का एहशास हुआ तो उन्होंने अपने सन्देश में सबसे पहले जन्म के आधार पर ब्राह्मण होना असत्य कहा।

यह सत्य है कि जाति- व्यवस्था प्रथम दृष्टया **विभाजन के सिद्धान्त** को प्रतिपादित करता है। समाज जितने टुकड़ों में विभाजित होगा उतना ही कमजोर होगा। कमजोर लोगों पर आसानी से शासन किया जा सकता है। जब हम वर्ण से जाति की ओर आगे बढ़ते है तो अगला प्रश्न उठता है - कि ब्राह्मणों को वर्ण-भेद से जाति- भेद की ओर जाने की क्यों आवश्यकता पड़ी ? उन्हे महशूस हुआ कि केवल वर्ण- भेद स्थायी सत्ता सुख के लिए सक्षम अस्त्र नहीं हो सकता है। शूद्रों की संख्या सवर्णो की अपेक्षा बहुत ज्यादा थी। वे संगठित हो समय समय पर राजसत्ता पर काबिज करते रहते थे। अतः वर्ण भेद की कमजोरी को समझते हुए वर्ण से जाति की ओर जाना मुट्ठी भर सवर्णो के लिए आवश्यक हो गया। देश छोटे छोटे सूबों में बंटा हुआ था। प्रत्येक सूबा किसी राजा के अधीन होता था। राजतंत्र में जाति व्यवस्था का लाभ केवल शोषक वर्ग को मिलता है।

डा. अम्बेडकर के अनुसार *जातियॉ एक ऐसी कमिक व्यवस्था है, जहॉ एक जाति सबसे ऊपर है और सर्वोच्च है, तो वहीं दूसरी जाति सबसे नीचे है और इन दोनों के बीच अनेक जातियॉ है जो किसी के ऊपर है तो किसी के नीचे है।* हिन्दू समाज व्यवस्था में मान- सम्मान और अधिकार **नीचे से ऊपर** की ओर बढ़ता है। साथ ही मुफ्तखोरी, निकम्मापन **नीचे से ऊपर** की ओर बढ़ता है। ऊपर बैठा समाज बिना किसी मेहनत के, केवल जीभ चलाकर मौज उड़ाता है और सबसे नीचे वाला समाज, सारे बोझ से दबकर मरते रहता है।

इसी तरह अपमान, बेइज्जती, शोषण और अन्याय-अत्याचार **ऊपर से नीचे** की ओर बढ़ता है। समाज में नीचे वाला व्यक्ति सबसे ज्यादा अपमानित होता है और ऊपर बैठा व्यक्ति सम्मानित होता है। इस तरह गैरबराबरी पर आधारित समाज व्यवस्था को शैतानी व्यवस्था कहा जाना उचित होगा। लेकिन जो इस व्यवस्था का हितग्राही वर्ग है, वह इस शैतानी व्यवस्था को ही उत्तम बताने की कोशिस करेगा। लेकिन जो इस सीढ़ीनुमा व्यवस्था का शिकार है वह इसे उचित कैसे मानेगा। इस सीढ़ीनुमा समाज व्यवस्था को आगे चित्र मे दर्शाया गया है।

यथास्थिति बनाम परिवर्तन का सिद्धान्त ः यह चित्र वर्ण एवं जाति व्यवस्था, जनसंख्या तथा विभिन्न अधिकारों के साथ मान- सम्मान की स्थिति को दर्शाता है। परिवर्तन की दिशा में कार्यरत अनेक महापुरूषों के सामाजिक स्थिति और परिवर्तन के सिद्धान्त को संक्षिप्त में दर्शाया गया है।

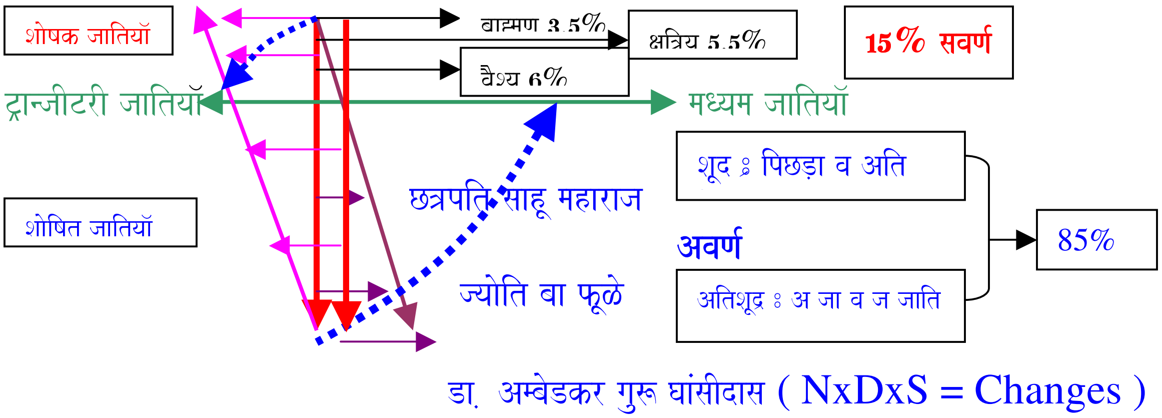

ऊपर शत प्रतिशत मान सम्मान और अधिकार

नीचे 100% अपमान वेइज्जती शोषण अन्याय अत्याचार

समाज व्यवस्था और विभिन्न अधिकारों मे किसकी कितनी भागेदारी

श्रेणी	जनसंख्या	% राजनीति	% नौकरी	% व्यापार	% भूमि
ब्राह्मण	3.5%	**41**	**62**	10	5
क्षत्रिय	5.5%	15	12	27	**80**
वैश्य	6%	10.5	13	**60**	9
पिछड़ी जाति	52%	8	7	0.8	4
अनुसुचित जन जाति	7.5%	7.5	1	0.1	0.5
अनुसुचित जाति	15%	15	4	0.1	0.5
धार्मिक अल्प संख्यक	10.5%	3	1	2	1

मण्डल कमीसन के रिपोर्ट के अनुसार- उपरोक्त चित्र मनुवाद पर आधारित खड़ी समाज व्यवस्था व विकास के विभिन्न क्षेत्रों में भागेदारी की वास्तविक स्थिति को दर्शाता है।

जातिवाद के जनक, मनु का सिद्धान्त ः

भारतीय समाज व्यवस्था को विभाजित रखने में मनु महाशय का विशेष योगदान है। जाति व्यवस्था का मूल आधार मनुवाद है जो अनुलोम और पतिलोम के सिद्धान्त पर निर्मित एवं विकसित किया गया है। **अनुलोम** ः ऊपर वर्ग का पुरूष द्वारा नीचे वर्ग की स्त्री के सम्पर्क से उत्पन्न सन्तान पर लागू होता है। इसे प्रोत्साहित किया गया है। **प्रतिलोम** ः नीचे वर्ग का पुरूष के साथ उच्च वर्ग के स्त्री के संबंध से उत्पन्न सन्तान के साथ लागू होता है। इसे हतोत्साहित किया गया है तथा समाज में नीचे फेंका गया है। मनु महाशय अनुलोम की अनुमति तो देते है और ऐसे संबंध को ऊपर की श्रेणी प्रदान करते हैं। लेकिन वहीं प्रतिलोम पर कठोर पावन्दी लगाते हुए ऐसे संबंध को निम्न श्रेणी मे ढकेल देते है। एक ही धर्म के लोगों के बीच विभेद कैसे होता है, हिन्दू धर्म इसका अभूतपूर्व उदाहरण है। स्त्री-पुरूष के प्राकृतिक सम्बन्ध को अलग अलग जाति का स्वरूप किस तरह प्रदान किया गया है। मनु के ऐसे सिद्धान्त को समझना होगा, मलाई खुद खायें और छाछ आपके मुह पर फेंके।

जाति व्यवस्था वास्तव में केवल ब्राह्मणों का हितग्राही है। जाति के आधार पर समाज में उनकी प्रभुसत्ता बना हुआ है। जन्म के आधार पर मूर्ख ब्राह्मणों को भी सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। शेष जनता अधिकारहीन है। *पूजिय विप्र शील गुणहीना, शूद्र न गुण गण ज्ञान प्रवीना।* मनु स्मृति के अनुसार हिन्दू धर्म सिखलाता है कि - *शूद्र यदि धन संचय करने की स्थिति में हो, फिर भी ऐसा न करे क्योंकि शूद्र के धन संचय करने से ब्राह्मण को दुख पहुँचाता है। राजा शूद्र द्वारा संचित धन छीनकर ब्राह्मणों को दे दे।* बेचारा क्षत्रिय समुदाय भी इस कुव्यवस्था का शिकार हो गया है। *सौ साल के उम्र के क्षत्रिय को पांच वर्ष के नवजात, अबोध ब्राह्मण शिशु को पिता तुल्य मानने को कहा गया है।* यही **ब्राह्मणवाद** हिन्दू समाज के शोषण व अन्याय- अत्याचार का जड़ है। यह एक ऐसा जहर का पेड़ है, जो इंसान- इंसान के बीच हर दिशा में भाईचारा को नष्ट करता है, विभेद उत्पन्न करता है और दुश्मनचारा को प्रोत्साहित करता है। इस जहर के प्रकोप में जो भी आया साबूत नहीं बच पाया। ब्राह्मणवाद एक सामाजिक वायरस है जो अमरबेल की तरह हर जगह छाया हुआ है। आज ब्राह्मण भी ब्राह्मणवाद के शिकार है तो पिछड़े व दलित वर्ग में भी ब्राह्मणवाद प्रवेश कर गया है।

जाति व्यवस्था केवल शूद्रों के लिए ः

वर्ण से जाति का निर्माण करते समय एक और खास बात का ध्यान रखा गया है। सवर्णो ने अपने वर्ण को ही जाति घोषित कर दिया। जैसे ब्राह्मण वर्ण भी है और ब्राह्मण जाति भी। क्षत्रिय वर्ण है और जाति भी, उसी तरह वैश्य वर्ण है और वैश्य जाति भी। लेकिन यदि आप किसी शूद्र से पूछें, कि वह किस वर्ण का है, तो वह अपने वर्ण के बदले अपनी जाति बतायेगा। उससे जाति पूछने पर भी, वह अपना केवल जाति बतायेगा। इस तरह देखा जाय तो, जाति व्यवस्था केवल शूद्रों में ही होता है, सवर्णो में नहीं।

सत्ता का लाभ लेकर सवर्णो ने चालाकि से अपना वर्ण और जाति एक रखा तथा अपना विभाजन नहीं होने दिया। जाति व्यवस्था केवल शूद्रों के लिए ही लागू किया गया। बाद में इस मनु

प्रतिपादित जाति व्यवस्था को कर्म का आधार बताते हुए ईश्वर प्रदत्त घोषित कर दिया। इस बात की पुष्टि के लिए, समय समय पर अपने ग्रन्थों में परिवर्तन करते रहे। सारे वैदिक ग्रन्थों के निर्माता ब्राह्मण रहे हैं। इन्होंने अपने ग्रन्थों में लिखा कि यह जाति व्यवस्था ईश्वर के द्वारा स्वयं निर्मित है। शिक्षा सवर्णो के कब्जे में था। जनता ब्राह्मणों की चाल समझ नहीं पायी और समाज मूक दर्शक बना अनजानेपन में धोखे से उसे सही मानता गया। उनके इस कुकृत्य का समाज विरोध न कर सके इसलिए शूद्रों को शिक्षा से वंचित रखा गया। जातिवाद का निर्माण मानव समाज के बीच विभेद उत्पन्न करने के उद्देश्य से निर्मित किया गया है ताकि बहुसंख्यक शूद्रों में एकता व भाईचारा न बन सके। मुठ्ठी भर सवर्ण शूद्रों के सामाजिक विघटन का लाभ लेकर मनमाना राज करते रहें। अतः जातिवाद, मानवता का सबसे बड़ा दुश्मन है।

यथास्थिति बनाम परिवर्तन का सिद्धान्त ः

मनुवादियों की जरूरत है कि यह सीढ़ीनुमा समाज व्यवस्था 'खड़ी' टिका रहे या दूसरे शब्दों में **यथास्थिति** बना रहे, उसी में उनका हित है। लेकिन यह उन लोगों के लिए कैसे उचित होगा जो इस व्यवस्था के शिकार है। उन्हें तो **परिवर्तन** की हर पल आवश्यकता है। शोषितों को शोषकों के साथ बने रहने में शोषकों का कोई नुकसान नहीं, वरन् नुकसान तो केवल शोषितों का ही होगा। शेर और बकरे यदि साथ साथ रहते हैं तो शेर को कोई नुकसान नही बल्कि फाय्दा ही फायदा है। वहीं बकरी को केवल नुकसान ही नुकसान है। शेर, बकरी को कभी भी खा सकता है। लेकिन बकरी, शेर को कभी नहीं खा सकती। इस समाज व्यवस्था में कोई भी परिवर्तन होता है, तो इसका लाभ केवल शोषितों को मिलेगा। तब तक सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता है, जब तक यह व्यवस्था पूर्ण रूप से समानान्तर व्यवस्था में परिवर्तित नहीं हो जाता। जैसा कि उपरोक्त चित्र में इसे दर्शाया गया है।

आखिर परिवर्तन कौन करेगा ?
परिवर्तन वही करेगा जिसकी जरूरत होगी।
परिवर्तन की जरूरत किसको है ? जो इस व्यवस्था का शिकार है और भार से दवा जा रहा है। अर्थात यह समस्त **85** प्रतिशत दलित शोषित जनता जो इस व्यवस्था के शिकार हैं। शूद्रों के अलावा परिवर्तित अल्पसंख्यक सभी इस खड़ी व्यवस्था के शिकार है। इन सब में जाति क्षेत्र धर्म अथवा भाष के नाम पर आपस में बिखराव है। समस्त मानवीय अधिकारों वंचित हो अपमानित जिन्दगी जीने को मजबूर हैं। इन लोगों को आपस में भाईचारा बनाकर अधिकार युद्ध के लिए संगठित होना होगा। यही परिवर्तन की दिशा व दशा तय करेगी। षदि तीर लक्ष्य पर चले ता सफलता मिलेगी। तभी दाल्ति शोषित जनता अपनी मान सम्मान के साथ शोषण से मुक्ति पा सकती हैं। इसे **परिवर्तन का सिद्धान्त** कहते हैं। परिवर्तन को गणित की भाषा में इस तरह दर्शाया जा सकता है।

अर्थात **जरूरत x चाहत x ताकत = परिवर्तन**

Need x Desire x Strength = Changes

N x D x S = Changes

i.e. Changes is directly proportional to need, desire and strength.

जिसमें N – Need जरूरत
D- Desire चाहत
S- Strength ताकत

परिवर्तन जरूरत चाहत और ताकत का अनुपातिक है। अर्थात इन तीनों के गुणनफल के अनुपात में ही परिवर्तन संभव है। परिवर्तन की जरूरत सबसे नीचे वाले समाज को ज्यादा है। यदि उसी अनुपात में चाहत और ताकत पैदा हो जाती है तो परिवर्तन आ सकती है। चाहत और ताकत के लिए ज्ञानवान अथवा जानकार होना जरूरी है। जानकारी के लिए प्रशिक्षण जरूरी है। प्रशिक्षित कार्यकर्ता **जरूरत** को अच्छी तरह समझते हुए, **चाहत** और **ताकत** पैदा कर सकते है। तैयारी के अनुपात पर ही परिवर्तन की दिशा व दशा (स्थिति) तय होगी। तैयारी के बिना ताकतवर दुश्मन से नहीं लड़ा जा सकता। कमजोरी के साथ ताकतवर दुश्मन से लड़ना केवल असफलता को दावत देना है। इसमें जरूरत समय, स्थिति और परिस्थिति के अनुरूप बदलते रहता है। वहीं ताकत और ज्ञान या चेतना के अनुरूप चाहत पैदा होती है। यही 'क्रान्ति पथ' वास्तविक सतनाम आन्दोलन है।

खड़ी समाज व्यवस्था में ऊपर बैठा आदमी को परिवर्तन की क्या जरूरत है। वह तो हमेशा चाहेगा कि ऊपर ही बैठा रहे। ऊपर होने के कारण उसका ऐशो- आराम के साथ मान -सम्मान व अधिकार सभी सुरक्षित है। वह अपना लाभ दूसरों को क्यों बांटना चाहेगा। उसे तो किसी भी तरह की परिवर्तन होने से नुकसान होगा। परिवर्तन से उसकी सारी सुविधायें ऐशो- आराम कम हो जायेगा। अतः ऊपर बैठा वर्ग जहॉ तक संभव हो हमेशा परिवर्तन का विरोध करेगा। वह यथास्थिति को बनाये रखने की कोशिस करेगा। यथास्थिति बने रहाने पर ही उसका हित है। परिवर्तन को रोकना व मोड़ना उसकी जरूरत है। परिवर्तन को मोड़ने के लिए जरूरत पड़ने पर वह सुधार की बातें करेगा। लेकिन परिवर्तन को वह हर कीमत में रोकने का प्रयास करेगा। क्रान्ति- पथ को सुधारवादी नीति से ही मोड़ा जाता है। परिवर्तन के राह पर चलने वालों को सुधारवादियों से ज्यादा खतरा है।

सामाजिक परिवर्तन के प्रेरणाश्रोत ः

जरूरत चाहत और ताकत के अनुरूप ही परिवर्तन होता है। सन् **1848** में पूना में एक घटना घटी। माली समाज में पैदा हुए ज्योतिराव फूले कक्षा में हमेशा प्रथम आते थे। उनका एक ब्राह्मण दोस्त था जो बड़ी मुस्किल से कक्षा में पास होता था। दोनों में अच्छी दोस्ती थी। ब्राह्मण लड़के के घर शादी हो रहा था। उसने अपने दोस्त ज्योतिराव को शादी में आमंत्रित किया। ज्योतिराव फूले सज धज कर ब्राह्मणों की बारात में साथ चलने लगे। ब्राह्मणों को यह बात अच्छी नहीं लगी कि एक माली का लड़का उनके साथ बराबरी में चले। उन्होंने ज्योतिराव को शादी से जब धक्का देकर निकाल दिया। ज्योतिराव को आत्मग्लानि हुई। वे मूलामूठा नदी के किनारे जाकर रोने लगे कि आखिर शूद्र पैदा होने पर उसने क्या पाप किया? उसी बीच अछूत जाति से गले में हन्डी, कमर में झडू लटकाये, अधनंगी बदन, दो औरते नदी में पानी भरने आ रही थी। उन दोनों ने ज्योतिराव को रोते देखकर हंस दिया। इनकी हंसी से ज्योतिराव को गहरा दुख लगा। वे कारण को बारीकि से समझकर सोचने में मजबूर हो

गये। वे पढ़े लिखे होने के कारण शिक्षा के महत्व को समझे कि हजारों साल से शूद्रों को शिक्षा से वंचित क्यों रखा गया है। उन्होंने जरूरत को समझा और कहा कि *शिक्षा के अभाव से बुद्धि नष्ट हुई, बुद्धि के अभाव से गति नष्ट हुई, गति के अभाव से धन नष्ट हुई और धन के अभाव से शूद्र हताश हुए। एक शिक्षा के अभाव से शूद्रों का इतना बुरा हाल हुआ।* उन्होंने नारि शिक्षा से लेकर 'सत्य शोधक समाज' तक अनेकों आन्दोलन कर समाज में परिवर्तन की लहर पैदा की। अंग्रेजों के शासनकाल में गुलामगिरी नामक किताब लिखकर देश की गुलामी का मुख्य कारण सेठजी भट्ट जी कहा।

आगे चलकर कुर्मी समाज में पैदा हुए छत्रपति साहू जी को जब उनके अपने रसोई में उनके ब्राह्मण नौकर द्वारा बेइज्जती की गई। तब इस धोखे का एहशास करते हुए उन्होंने समाज को आगाह करते हुए कहा कि "भारत ही एक ऐसा देश है जहॉ विधाता की भी जाति होती है। अतः हर समस्या का जड़ जाति है। जब तक जाति के आधार पर ब्राह्मणों का महत्व बना रहेगा। यह देश दरिद्र व गुलाम बना रहेगा। भारत की समस्या का समाधान, जल्दी या देर से होगी, यह इस बात पर निर्भर करता है कि कितनी जल्दी यह जाति व्यवस्था समाप्त होगी।" सारा शूद्र समाज अधिकार विहीन था। उस समय जीवन के हर क्षेत्र में सवर्णो का एकाधिकार था। अतः सन् **1902** में अपने ताकत का एहशास कर, जरूरत को समझते हुए, सवर्णो का एकाधिकार समाप्त कर, शूद्रों की राज काज में भागेदारी हेतु अपने राज्य में आरक्षण की व्यवस्था कर डाली। अतिशूद्र समुदाय में पैदा हुए डा. अम्बेडकर को सयाजी राव गायकवड से मदद दिलाकर उच्च शिक्षा के लिए विदेश भेजा। यह सोच ही है जो परिवर्तन की दिशा निर्धारित करती है। डा. अम्बेडकर की जीवनी, कार्य एवं सिद्धान्त पर बहुत सारी किताबें प्रकाशित हो चुकी है। उनकी अपनी लेख काफी महत्वपूर्ण हैं। यह तो सूर्य को दीपक दिखाने वाली बात हो जायेगी। अतः यहॉ उल्लेख करना जरूरी नहीं लगता।

इस जाति व्यवस्था के कारण बहुसंख्यक वर्ग अल्प संख्यक बन कर ताकतहीन हो जाता है। कमजोर व्यक्ति का आसानी से शोषण किया जा सकता है। इसी व्यवस्था के कारण मुठ्ठीभर लोग सारी शक्तियों पर कब्जा किए बैठे हैं। बिना मेहनत के समस्त सुख सुविधाओं का उपभोग करते आ रहे हैं। दूसरी ओर नीचे का समुदाय जो देश के सारे उत्पादनों का मुख्य श्रोत है, गरीबी, भूखमरी और लाचारी से त्रस्त हैं। सड़क से लेकर खेतों तक, मकान से महलों तक, गांव से लेकर शहर तक, कारीगरी, शिल्प कला, कल- कारखाने तक हर क्षेत्र में काम करने वाला, यही मूलनिवासी समुदाय है, जिन्हे ठीक से दो जून की रोटी भी नसीब नहीं हो पाती। तन में ढकने को कपड़ा भी नहीं मिलता है। इस खड़ी समाज व्यवस्था के कारण, ये धन पैदा करने वाले लोग, निर्धन बना दिये गये है और जो धन पैदा नहीं करते, वे धनवान बने बैठे हैं। इस जहरीली व्यवस्था के कारण करोड़ों लोग त्रस्त होकर अन्य धर्म में आश्रय लेने को मजबूर हुए। लेकिन मुस्लिम व ईसाई लोग भी इस जातिवाद के प्रभाव से बच नहीं पाये।

यदि शोषित समाज को अपने शोषण अन्याय अत्याचार से निजात पाना है तो उसे इस व्यवस्था में परिवर्तन लाना होगा। परिवर्तन की सबसे ज्यादा जरूरत शोषित समाज को है। वहीं समाज में

यथास्थिति बने रहने पर शोषक वर्ग को फायदा है। इसलिए ब्राह्मणवाद व्यवहारिक जगत की बात कम करता है, लेकिन जनमानस को परलोक, स्वर्ग- नरक, पाप- पुण्य, आत्मा- परमात्मा, भाग्य- भगवान आदि के नाम पर, भय के साथ आस्था को जोड़ते हुए, काल्पनिक जगत की भूल भुलैया में व्यस्त रखना चाहता है। ब्राह्मणवादी प्रभुसत्ता बरकरार रखने की इनकी अलग अलग कई संस्था है जहाँ से इस व्यवस्था का नियंत्रण एवं संचालन होता है। शोषक वर्ग की चाहत है कि समाज व्यवस्था यथावत बनी रहे। तभी वह आसानी से शोषण होता रहेगा। शोषित वर्ग जब व्यवस्था का विरोध करता है तो ईश्वर को उसके सामने लाकर खड़ा कर देता है। उस यंत्र का डर दिखाता है। जब तक समाज में उनके ईश्वर नामक शोषण यंत्र को जनता समझ नही सकेगी, तब तक शोषण जारी रहेगा। जनता शोषक वर्ग को दोष देने के बजाय अपने भाग्य को दोष देती रहेगी। शोषण पर ईश्वर का मुहर लग जाने से शोषकों का काम आसान हो गया है।

परिवर्तन की ओर गुरू घांसीदास ः

गुरू घांसीदास जी ब्राह्मणवाद की संस्था को जड़ से उखाड़कर फेकना चाहते थे। वे जनता को परलोक के बदले, व्यवहारिक दुनिया अर्थात इसी लोक में व्यस्त रखना चाहते थे। गुरू घांसीदास के आन्दोलन के प्रभाव को हमें गम्भीरता से अध्ययन करना होगा। इनके मूल कारणों को समझना अत्यंत आवश्यक है।

यदि हम सतनाम आन्दोलन के मूल में जाए तो उनके उपदेश और वाणियों को गौर करना जरूरी है। वे किस तरह की जीवन शैली चाहते थे। **पहला** ः अन्धविश्वास और रूढ़ीवाद जड़ से समप्त हो। **दूसरा** ः मानव मानव सब एक समान है अर्थात समतावदी विचार जहाँ ऊँच नीच का भेदभाव नहीं हो। **तीसरा** ः इंसानों के बीच प्रेमभाव रखना। और **चैाथा** ः खान पान में शुद्धता और निरीह पशुओ के साथ भी दया एवं सहानुभुति का भाव, जो अहिंसा का मार्ग प्रशस्थ करता है।

ये चारों बाते ब्राह्मणवादी खड़ी समाज व्यवस्था के खिलाफ जाता है। इससे उच्च्व वर्ग का हित मारा जाता है। यदि आम जनता मन्दिर जाना छोड़ दे, तो ब्राह्मणों की आमदनी एकदम समाप्त हो जायेगी, बनिया के दुकान को भी कुछ हद तक असर पड़ेगा, लेकिन क्षत्रिय को इससे को कोई खास नुकसान नहीं होगा। इसके अलावा आदिवासी व अन्य पिछड़ी जातियों को बिल्कुल कोई नुकसान नहीं होता। थोड़ा बहुत उनके आस्था को चोट लग सकता है, लेकिन हानि का कोई प्रश्न नहीं उठता। यदि जाति के आधार पर **खड़ी** समाज व्यवस्था, **समानान्तर** व्यवस्था में बदल जाता है जैस कि ऊपर चित्र में दिखाया गया है । इस परिवर्तन से समस्त पिछड़ी जातियों को शुद्ध लाभ होता है। उनका मान सम्मान बढ़ता है। उन्हें शोषण से मुक्ति मिलती है।

अतः सतनाम आन्दोलन से सबसे ज्यादा नुकसान ब्राह्मणवाद के हितग्राही वर्ग को होता है। इसलिए दुश्मन का **पहला** ः प्रयास इस आन्दोलन को ऐन केन प्रकारेण रोकने की होती है। **दूसरा** ः जब ये रोक पाने में सफल नहीं होते हैं तो सुधारवाद को सामने लाकर दिग्भ्रमित कर, आन्दोलन को दूसरे

दिशा में मोड़ने का प्रयास होती है। **तीसरा** ः जब ये दोनों रास्ते कामयाब नहीं होते तो फिर गुमराह कर छिन्न भिन्न करना ही दुश्मन के पास एक मात्र विकल्प बच जाता है।

सन्त महापुरूषों के जीवन एवं कार्यशैली को अपनी भावनाओं से व्यक्त करने के लिए शब्दालंकारों के प्रयोग कुछ सीमा के भीतर उचित कहे जा सकते है। लेकिन 'तिल का ताल' बनाने से, विचारधारा मूल रास्ते से हट कर अर्थ से अनर्थ हो जाते है। यह डर लगता हे कि अलौकिक जगत की इस अन्धी दौड़ में कहीं 'सत्य के पुजारी' को 'असत्य का उपासक' न बना दें। किसी महान ब्यक्ति को ईश्वर या चमत्कारी बना देने से, वह आम आदमी के पहुँच से, अपने आप दूर चला जाता है। उसका बौद्धिक चिन्तन धीरे धीरे ह्रास होना शुरू हो जाता है। अन्ततः भक्ति पथ की ओर अग्रसित हो आस्था में बदल जाता है। उनके व्यवहारिक जीवन एवं कार्य आम जनता के पहुँच से कोसों दूर चला जाता है। आज यही बात गुरू घांसीदास और सतनाम आन्दोलन के साथ होता हुआ नजर आता है। आइये इन बिन्दुओं पर कुछ समीक्षा करें।

कुप्रचार से कैसे बचें ः

शिशु मंदिर प्रकाशन डा. श्याम सुन्दर त्रिपाठी द्वारा लिखित पुस्तक "सामाजिक समरसता के प्रतीक गुरू घांसीदास" में गुरू घांसीदास की जीवनी को जिस चमत्कारिक ढंग से पेश किया गया है, अवलोकन करना जरूरी हो जाता है। प्रस्तावना में श्री त्रिपाठी ने बताया है कि यह पुस्तक राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ (**आर.एस.एस.**) के क्षेत्रीय प्रमुख श्री शांताराम सराफ एवं क्षेत्रीय कार्यवाह श्री गोपाल जी ब्यास के निर्देशन पर "हिन्दू संस्कृति के उद्धारक" के रूप में उनका जीवन चरित्र लिखा गया है। निश्चय ही वे प्रशंसा के पात्र है। लेकिन यह सोचने का विषय है कि कौन सी हिन्दू संस्कृति की रक्षा करना चहते हैं ? जातिवादी वैदिक संस्कृति या मानवतावादी बौद्धिक संस्कृति अथवा ब्राह्मणवाद पर आधारित यथास्थितिवादी खड़ी समाज व्यवस्था की रक्षा करना चहते हैं। गुरू घांसीदास ने वास्तव में वैदिक संस्कृति के बदले भारत की प्राचीन समतावादी संस्कृति की पुनरोत्थान किया है। आइये इन बिन्दुओं पर अध्ययन करें, कि आखिर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के प्रमुख को ऐसी कौन सी जरूरत आन पड़ी या फिर वैदिक देवी देवताओं का भीड़ उनकी समस्याओं की समाधान करने में अक्षम और कमजोर पड़ गया। क्या वे तैतीस कोटि देवता असरहीन हो गये, जो उन्हें सतनाम आन्दोलन के पुरोधा के चरणों में नत मस्तक होना जरूरी हो गया। श्री दीनदयाल उपाध्याय के लेख से पता चलता है, कि जिस तरह कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य ने बुद्ध धम्म को कमजोर करने का प्रयास किया था। ठीक उसी तरह सतनाम आन्दोलन को कमजोर करने का राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के इशारे पर श्री त्रिपाठी जी का यह उमदा प्रयास मालूम होता है। इसे गम्भीरता से समझना होगा।

श्री त्रिपाठी के नजर में गुरू घांसीदास कैसे थे ः

चमत्कारी बालक ः "गिरौदपुरी के बच्चे लकड़ी काटने जॅगल गए थे। उनके साथ यह तेजस्वी बालक भी था। जिसने अपने साथियों को चोरी करने से रोका था। अचानक एक बालक को सॉप ने डस लिया उस बालक का नाम बुधारू था। थोड़ी देर में सॉप का विष चढ़ने लगा। वह जमीन पर गिर गया और

उसके 'प्राण पखेरू उड़ गए'। घबराकर सभी बच्चे रोने लगे। पर वह तेजस्वी बालक शांत मन और निश्चिंत भाव से यह सब देख रहा था। सभी बच्चों ने इस तेजस्वी बालक से समस्या का समाधान खोजने के लिए प्रार्थना की। साथियों की प्रार्थना सुनकर वह बालक ध्यानमग्न होकर बैठ गया और सत्पुरूष (प्रभु) से बुधारू के प्राण वापस लाने के लिए प्रार्थना करने लगा। उसने साथियों से भी इसी तरह सच्चे मन से प्रार्थना करने को कहा । थोड़ी देर में चमत्कारी घटना हुई सबने देखा कि बुधारू जीवित हो गया है और मन्द मन्द मुस्करा रहा है, जैसे सॉप ने उसे काटा ही नहीं था।....'' चमत्कार सिद्ध करने एक अनोखा नमूना लगता है।

ब्राह्मणवाद न केवल अलौकिक, काल्पनिक और चमत्कार के सहारे टिका हुआ है, बल्कि (सत्य) वास्तविकता से कोसों दूर ... भोली भाली जनता के मन में भ्रम पैदा करना स्वाभविक कार्य है। सत्पुरूष जो जमीनी धरातल पर रह कर अपना कार्य करते है, उनके लिए चमत्कार एक घटना हो सकती है, प्राकृतिक नियम नहीं। वह सर्प जिसने बालक को काटा था, यदि बहुत जहरीला नहीं रहा होगा, तो सॉप का जहर कुछ देर बाद उतर गया होगा। ऐसी घटनाएँ छत्तीसगढ़ में आज भी होती रहती है। हसौद- जैजैपुर के पास कैथा नामक गांव है जहॉ की मिट्टी से सर्प का जहर उतर जाता है। श्री त्रिपाठी ने फिल्म के तर्ज पर, इधर मन्दिर में प्रार्थना किया उधर मुर्दा उठ खड़ा हुआ, वैसे ही पेश करने की कोशिस की है।

लेकिन नेशनल बहुजन पब्लिकेशन ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित गुरू घांसीदास जीवन और कार्य पुस्तक के पृष्ठ कमांक **62** में कुछ इस प्रकार लिखा गया है "एक बार बालक घांसीदास पास के जंगल में अपने साथियों के साथ खेल रहे थे। तब उन्होने एक साहसिक कार्य किया। खेलते खेलते उनके एक मित्र को सांप ने काट लिया। वह विष के असर से बुरी तरह घायल हो मरणासन्न स्थिति में पहुँच गया। परंतु घांसीदास ने तत्काल सूझ बूझ से काम लिया। सांप काटने की जगह पर, खुद की पर्वाह न करते हुए, वहॉ का खून चूस चूस कर बाहर फेंकने लगा फलस्वत्प उसके मित्र की जान बच गयी। गांव वालों को जव पता चला तो घांसीदास के साहस एवं पराकम से काफी प्रभावित हुए।" यह निश्चय ही व्यवहारिक सत्य लगता है।

चमत्कार का एक और दृष्टान्त इस प्रकार है ः

"सफुरा की मृत्यु और पुनर्जीवन" शीर्षक के अन्तर्गत डा. श्याम सुन्दर त्रिपाठी ने अपनी पुस्त में लिखा है कि "जगन्नाथ धाम की यात्रा अधूरी छोड़कर गुरू घांसीदास सारंगढ़ के जंगलों मे साधना करने चले गये। जब बाकी यात्रियों के साथ गुरू घांसीदास गॉव न पहुँचे तो उसकी पत्नी सफुरा को गहरा आघात लगा। उसने अपने प्राण त्याग दिए। गांव की अमराई के नजदीक सफुरा के मृत शरीर को पृथ्वी की गोद में जगह दे (दफना) दी गई। बच्चे अनाथ हो गये। किसी व्यक्ति ने गांव में यह अफवाह फैला दी कि घांसीदास भी जंगल में शेर के शिकार हो गये हैं। दुखी होकर उनके सगे संबंधियों ने उनका किया-कर्म करना चाहा। जिस दिन उनका दशगात्र (अर्थात दस दिन बाद) मनाया जाने वाला था, उसी दिन गुरू घांसीदास गिरौदपुरी आ पहुँचे। उनकी स्थिति उस समय एक पागल व्यक्ति के समान

हो गई थी। सिर पर बाल एवं दाढ़ी बढ़ी हुई तथा पैरों में जगह जगह छाले थे।...सफुरा की मृत्यु का समाचार सुनने पर उन्होंने कहा 'मेरी सफुरा मर नहीं सकती। क्या वह तीन- तीन बच्चों को रोता बिलखता देह त्याग कर देगी। आप लोग उसके शरीर को बाहर निकालिए मैं उसे फिर जीवित कर दूंगा।' सफुरा की कब्र खोदी गई और उसका शव (दस दिन बाद) बाहर निकाला गया। घांसीदास जी ने डोंगरी के अमृतकुंड से जल लाकर एक लोटा (लगभग एक लीटर) पानी सत्नाम का मंत्र पढ़कर सफुरा को पिला दिया। जय सतनाम कहकर सफुरा उठकर बैठ गई । लोगों को आश्चर्य का ठिकाना न रहा।"

यह एक भ्रामक प्रचार है, ब्राह्मणवादी लोग इस तरह रूढ़ीवदी परंपरा को जीवित रखना चाहते हैं, ताकि समाज एवं जनता का विश्वास उनसे कहीं उठ न जाए। इसलिए ऐसी अलौकिक कहानियॉ समय समय पर बढ़ा- चढ़ा कर गढ़ा जाता रहा है, ताकि शोषकवर्ग, धर्म के आड़ में अपनी रोटी सेंकते रहें और ब्राह्मणवाद पर समाज एवं जनता का विश्वास यथावत बना रहे। सत्य के राही को, असत्य पथ पर कैसे भटकाया जाता है, इससे अच्छा सुन्दर कहानी नहीं हो सकता। लेकिन गुरू घांसीदास के सच्चे अनुयायिओं को इन सब अलौकिक एवं काल्पनिक सत्य से परे रहना चाहिए, यही उनकी सच्ची पूजा होगी।

यह घटना उसी प्रकार लगता है जैसे रामायण में वर्णन है **"छुअत शिला भई नारि सुहाई । पाहन तेन काठ कठिनाई।"** राम जब वनवास जा रहे थे। तब नदी पार करते समय नाव चढ़ने के पहले केवट ने राम से कहा कि आपके चरण स्पर्श से 'पत्थर भी नारि' बन जाता है फिर मेरा काठ के नाव का क्या भरोसा, मेरा तो रोजी रोटी समाप्त हो जायेगी। यह कहानी गौतम ऋषि की पत्नि अहिल्या के संबंध में है, जिसे इन्द्र के साथ अनैतिक सम्बन्ध के कारण ऋषि ने पत्थर बनने का श्राप दिया था। कहा जाता है कि अहिल्या पत्थर बन गई थी। आज उसकी इस तरह सफाई दी जाती है कि अहिल्या श्रापवश जड़वत पत्थर सी बन गई थी, राम के समझाने से वह पुनः नारी जीवन में वापस आ गई।

अन्धविश्वास की साया से समाज अभी भी मुक्त नहीं हुआ है। इसलिए शायद सफुरा के पुनर्जीवन प्राप्त करने की घटना को, आज चमत्कार के रूप में पेश कर लोग, थोड़ी देर के लिए खुश हो जाए। लेकिन न तो यह लौकिक अथवा व्यवहारिक सत्य है और न ही प्राकृतिक सत्य हो सकता है। यह एक भ्रामक प्रचार मात्र है। जैसे हाल ही में दो तीन साल पहले, गणेशचतुर्थी के दिन गणेश की मूर्ति को देश भर में दूध पिलाया गया, रूढ़ीवादियों द्वारा खूब प्रचार भी किया गया। साइफन के सिद्धान्त का प्रयोग करते हुए साबित करना चाहते थे, कि देवता आज भी मूर्तिरूप में जिन्दा है और वे आज भी सार्वभौमिक, सर्वब्यापी एवं उतने ही शक्तिमान हैं, जैसा कि उनके ग्रन्थों में वर्णन है। यदि वह मुर्ति दूध या पानी पी सकता है, तो उसे अन्य दूसरे किया -कर्म जैसे मल- मूत्र भी होना स्वाभाविक है। सर्वभौमिक होने के नाते, ये पत्थर की मूर्तियॉ अगर पूरे देश में मल -मूत्र करने लगे तो चारों तरफ पेशाब की नदियॉ बह जाएगी। लेकिन वही लेग इसपर चुप्पी साध लेते हैं। इस भ्रामक प्रचार का उसी

शाम रेडियो टेलीवीजन पर वैज्ञानिकों द्वारा खंडन भी किया गया। इस तरह के भ्रामक प्रचार से बचना चाहिए जो समाज को रूढ़ीवाद की ओर घसीटता है।

यह सत्य हो सकता है कि जगन्नाथ यात्रा से घांसीदास जी के घर वापस नहीं आने व शेर द्वारा खाये जाने की अफवाह को सुन कर, उनकी पत्नि सफुरा को अचानक दुख के पहाड़ टूट पड़ा होगा। पति का विछोह और गरीबी परिस्थिति में तीन- तीन बच्चों के लालन पालन का बोझ आदि के कारण मानसिक तनाव उत्पन्न होना स्वाभाविक है। एकाएक झटका लगने से वह मूर्छित हो गई होगी और संभवतः कोमा की स्थिति में चली गई होगी। यह स्वाभाविक घटना हो सकती है। ऐसी खबर क्षेत्र में आग की तरह फैलती है। एकान्तवास में अध्ययनरत घांसीदास जी को जंगल में आते जाते राह चलते किसी से पता चला होगा। यह भी हो सकता है किसी ने जंगल में चिल्लाकर उन्हें आवाज दिया हो। वापस घर आकर उन्होंने अपने पत्नि को मूर्छित अवस्था में देखकर तत्काल जंगल से पानी लाकर पिलाया हो, जिससे सफुरा मूर्छा की स्थिति से जीवित हो उठी होगी। यह कोई अतिसंयोक्ति नहीं कि गुरू घांसीदास जी के पूर्वज वैसे भी औषधियों के बारे में अच्छे जानकार थे। फलस्वरूप इन्हें भी बचपन से औषधियों का अच्छाखासा ज्ञान था। वे अपने ज्ञान का उपयोग कर सफुरा को कोमा की स्थिति से उबार लाए हो और सफुरा अपने पति को पाकर खुश हो जल्दी ठीक हो गई होगी।

उस जमाने में जब दलितों को कुऑ तालाब से पानी पीने नहीं दिया जाता था, अतः अपने पत्नि के मुर्छित अवस्था को देखते हुए , शायद घांसीदास जी ने आस पास की दूषित पानी पिलाने के बजाय जंगल का बहता हुआ, औषधिपूर्ण स्वच्छ एवं पवित्र पानी लाकर पिलाया होगा। जिससे सफुरा के स्वास्थ्य को लाभ हुआ होगा। स्वाभाविक श्रद्धा के कारण उस जगह को आज हम अमृतकुण्ड कह रहे है। वह जंगल में आज भी मौजूद है। मैंने वहॉ देखा है, कि वहॉ पानी का अच्छा प्राकृतिक श्रोत है और एक गढ्ढा सा बना हूआ है जहॉ से पानी निकलते रहता है। वहॉ आज दो पक्का कुऑ बना हुआ है। तब से आज **250** साल बाद भी यहॉ का पानी बहुत साफ एवं स्वादिष्ट है। साथ ही जंगल के जड़ी बुतियों में से बहने के कारण यहॉ का जल औषधिपूर्ण एवं पौष्टिक है। सिखों के गुरू रामदास ने पीने की पानी के लिए एक तालाब खुदवाया था। आज अमृतसर के नाम से प्रसिद्ध है । वहॉ वेरी का पेड़ है, जिसके छांव में बैठकर गुरू रामदास खुदाई का काम देखा करते थे। शायद इसी तर्ज में गिरौदपुरी के उस कुण्ड को अमृतकुण्ड कहते हों।

एक अलग तरीके से हट कर सोचने से ऐसा लगता है जैसे घांसीदास जी के बारे में बार बार कहा जाता है कि “मरे मुर्दा को जिलाए बाबा ... ।’ इसका लोग अकसर गलत ढंग से प्रचार करते है। वास्तविकता यह है कि उनके वाणी में इतनी शक्ति था कि मुर्दा भी उठ खड़ा होता जाता था। यह एक प्रचलित मुहावरा है। मुर्दापन लोगों के मानसिक स्तर को दर्शाता है। कहा जाता है कि ‘जिस व्यक्ति का आत्मस्मान मर जाता है वह जीते जी मुर्दा समान हो जाता है।’ उस समय अशिक्षा इस कदर व्याप्त थी कि लोग अज्ञानता एवं अनजानापन के जवरदस्त शिकार थे। मुर्दा के समान जीवन बीता रहे

थे। अतः मुर्दा जैसे जीवन व्यतीत कर रहे लोगों में चेतना जाग्रित कर उन्हें इंसान की तरह जीने का रास्ता बताया जिसे उनके अनुयायी श्रद्धावश इस तरह अभिव्यक्त करते हैं।

मध्य प्रदेश हिन्दी अकादमी द्वारा प्रकाशित **डा . हीरालाल शुक्ल** द्वारा लिखीत **गुरू घांसीदास 'संघर्ष, समन्वय और सिद्धान्त** ' पुस्तक को पढ़ कर ऐसा लगता है कि डा. शुक्ला यथास्थितिवादी विचारधारा के कट्टर समर्थक है। उनके ज्ञान का आधार बौद्धिक नही केवल वैदिक है। उक्त पुस्तक में अनर्गल, वाह्यात और निराधार बातों का भरमार है, जिनसे गुरू घांसीदास जी के जीवन और कार्य से दूर- दूर तक कोई सम्बन्ध नजर नहीं आता। हीरालाल शुक्ला जी अन्य वैदिक लेखकों की तरह काल्पनिक जगत, परलोक की ऊँची उड़ान भरते रहे है। इसमें उन्होंने गुरू घांसीदास को जवरदस्ती घसीटने की कोशिस किया है। ऐसे पूर्वाग्रह से ग्रस्त लेखकों के लेख से सतनाम के मानने वालों को हमेशा सावधान रहना चाहिए। ये जनता और समाज को कभी भी दिग्भ्रमित कर सकते हैं। उस पुस्तक में यदि कुछ है भी तो, वह एक भोंसला (मराठा) ब्राह्मण शासक के चारित्रिक पतन, अराजकता और कुव्यवस्था की कहानी है जिसमें कुछ सच्चाई जरूर नजर आती है। छत्तीसगढ़ में मराठा शासन ऐतिहासिक सत्य है। आइये उनके कुछ बातों का अवलोकन करें।

1. इन्होंने जगह जगह "हीन शिल्प" एवं "हीन शिल्पी" शब्द का उपयोग किया है यह सोचने का विषय है कि शिल्प- कला में हीन क्या चीज होती है । दुनिया का कोई भी शिल्प- कला 'हीन' नही होता बल्कि हीन बुद्धि होती है। ज्ञान एक कला है, नृत्य एक कला है, घड़ा बनाना एक कला है, पशुपालन एक कला है, कृषि कार्य एक उत्तम कला है, लोहा, सोना, चांदी, तांबा, पीतल, लकड़ी, चमड़ा, कपड़ा, कांच आदि अनके उपयोगी वस्तुओं का बर्तन, आभूषण या अन्य काम की वस्तु बनाना तो महान शिल्पकला है। एक जमाना था जब शिक्षा और नौकरी में केवल ब्राह्मणों का आधिपत्य था। मन्दिरों में पत्थर की मूर्ति को भगवान कह कर जनता को वेवकूफ बनाकर लूटना भी एक कला है। गांवों मे यह कहावत काफी प्रचलित है "उत्तम खेती, मध्यम राज, लघुतम नौकरी और नीचतम व्यापार"।

यदि किसी कला को हीन कहा जाय तो निश्चय ही हीन- बुद्धि का परिचायक है। ज्ञात हो कि ऋगवेद के अनुसार आर्य लोग सोमरस, सुरा अथवा दारू (जो इनका अति प्रिय पेय पदार्थ था) जिसे चसक अर्थात चमड़े की बने थैले में रखते थे। इसका जिक हम **"आर्यो के पहले भारत में कौन थे"** विषय में कर आये है। चसक, जो गाय या अन्य पशुओं के चमड़े से बनाया जाता था। यदि ऋग्वेद के ये कथन सत्य है तो उस समय इस चमड़े की चसक को कौन बनाते थे, जब आर्य भारत भूमि में प्रवेश नहीं किये थे।

यदि अपने कला को वेचने से मनुष्य हीन शिल्पी कहलाता है तो शिक्षा (जैसे मानवीय आवश्यकता) को लम्बे अन्तराल तक एकाधिकार कर ब्राह्मणों ने अपने पेट पालने का धंधा बनाया

था। देश की शेष शूद्र समाज को अज्ञान व अन्जान बनाकर रखा था। हीनता कहॉ है कला में या सोचने के तरीके में इसे समझना आवश्यक है।

गुरू घांसीदास महान शिल्पी थे इसमें कोई दो मत नहीं। वे कृषि कला में प्रवीण थे। इसके अनेकों उदाहरण उनके जीवनकाल में मिलता है। कृषि कार्य यदि हीन शिल्प कला है तो उत्तम कला कौन सा है, यह सोचने वाले के सोच के स्तर को इंगत करता है कि वह कितना बुद्धिमान है। कला, कला होती है। प्रत्येक कला उत्तम होता है। कला में विभेद उत्पन्न करना ब्राह्मणवाद का कमाल है जिसके कारण कला एवं कर्म प्रधान देश जाति प्रधान देश बन गया। लोहार, सोनार, कुम्हार, चमार, ताम्रकार, कसेर, बुनकर, कोष्टा, बढ़ई , केवट, माली, काछी, कुर्मी, तेली, धोबी, नाई, दर्जी आदि हजारों जातियॉ व उपजातियॉ बन गई।

एग्नू के आनुसार यह बताया जाता है कि 'ब्राह्मणों की दशा विद्वान होने के बजाय राजदरबारी तथा सूबेदार अधिक थे। रतनपुर राज्य का ब्राह्मणत्व सो गया था और यहॉ के ब्राह्मण मांस मदिरा तथा मैथुन आदि पंच मकारों में मस्त एवं व्यस्त थे और उनमें शिक्षा शुन्यता की ओर थी। दशहरे में बलि मछली का भोजन मदिरा का सेवन ब्राह्मण घरों में आम बात थी।' शिक्षा के शिल्पी कहलाने वाले उच्च जाति के ब्राह्मणों की परंपरा ऐसी थी।

2. सतनाम पन्थ को **"ऐकेश्वरवाद"** बताया जाना असत्य है। सतनाम पन्थ ने ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार किया है। गुरू घांसीदास ने स्वयं मन्दिर मे जाने से मना किया और सत्य को मानव का आभूषण बताया। उन्होंने अपने भीतर छिपी शक्ति को जाग्रित करने पर जोर दिया है। सत्य एक विशुद्ध व्यवहार एवं सतनाम जीवनशैली है जो मानवीय चेतना पर आधारित है। उन्होंने सत्य को एक प्रकाश पुञ्ज की तरह पथ प्रदर्शक बताया। जैसे रोशनी के आने से अॅधकार छट जाता है, वैसे ही मानव शरीर में सत्य चेतना के प्रवेश करते ही ज्ञान चक्षु खुल जाते है और अन्धविश्वास का परदा फट जाता है।

यहॉ कोई ईश्वर (जो वर अर्थात मनुष्य में ईश या ऊॅचा अथवा प्रधान) नहीं है अन्यथा उसे अदृष्ट होने की क्या जरूरत है। यदि ईश्वर का अस्तित्व है तो निश्चय ही ऊॅच नीच का भेद- भाव बना रहेगा। ईश्वर की सत्ता समतामूलक तत्व का विरोधाभास करता है। ऊॅच- नीच का भेद कुछ स्वार्थी तत्वों द्वारा इसी सोच का परिणाम है। गुरू घांसीदास समता के हितग्राही थे। असमनता की व्यवस्था को समूल नष्ट करना चाहते थे। उन्होंने कहा है कि दुनियॉ में सारे इंसान एक बराबर है। सतनाम पन्थ में आज तक किसी को ईश्वर नहीं माना गया। जीव का संचालन सत्- चेतन प्रकिया का परिणाम है। ऐकेश्वरवाद केवल एक वैदिक भ्रान्ति है। वे ऐसा इसलिए कहते हैं ताकि उनके काल्पनिक ईश्वर की सत्ता बरकरार रहे जो घंटी बजाकर उनके पेट पालने का एक उमदा धन्धा है। ईश्वर की सत्ता के अन्त होते ही पुरोहितवाद परलोक से जमीनी धरातल पर धड़ाम से गिरता है।

एग्नू ने छत्तीसगढ़ियों के नैतिक चरित्र की प्रशंसा करते हुए कहा था "कि छत्तीसगढ़ियों का नैतिक चरित्र भारत के अन्य लोगों की तुलना में मुझे श्रेष्ठतर प्रतीत होता है। यहाँ हत्याएँ नहीं होती। छोटी- छोटी चोरियाँ भी नहीं होती। कुल मिलाकर छत्तीसगढ़ की जनता ईमानदार है। बड़े अपराधों के लिए अभ्यस्त नहीं है। अपराधी बिना किसी संकोच के अपना अपराध स्वीकार कर लेते थे। सत्य के प्रति भारत के अन्य क्षेत्रों की तुलना में यहाँ अधिक आग्रह है। शायद छत्तीसगढ़ियों के सत्य के इस तरह आग्रह की प्रेरणा गुरू घासीदास से मिली है।"

3 . इन्होंने सतनाम को तांत्रिक योग के अन्तर्गत बताया गया है कि "तांत्रिक साधक ...इसमें शब्द या मंत्र 'सतनाम' के रूप में दिव्यशक्ति सम्पन्न है। परमसत्ता का वह उच्चरित नाम है। यही '**शब्द ब्रह्म**' है। ... सतनाम मंत्र अस्पष्ट ध्वनियों से बना है जिसे बीज कहा जा सकता है। यही अक्षर ब्रह्म है। . . यौगिक यंत्र के रूप में चौका चक्र और पद्म का प्रतीक है .. गुरू घासीदास के समान।" इस तरह 'लौकिक सतनाम' को काल्पनिक या 'अलौकिक ब्रह्म' से तुलना करना अत्यंत भ्रामक है । सचमुच तुलसीदास के कुछ दोहे प्रासंगिक लगते है 'जाकी रही भावना जैसी... मूरत देखा तिन्ह तैसी' । एक वैदिक ब्राह्मण लेखक के सोच का स्तर कभी बौद्धिक नहीं हो सकता।

सतनाम न तो कोई तांत्रिक विद्या है और न ही कोई दैवी सन्देश है। यह एक शुद्ध बौद्धिक विचारधारा है और जीवन शैली है, जो अलौकिक- असत्य नही बल्कि लौकिक- सत्य पर आधारित है। जिस तरह से सतनाम को एक तांत्रिक विद्या और ब्रह्म का स्वरूप बताया जा रहा है, साधारण जनता को भ्रमित होना स्वाभाविक है। मूल कार्य से हट कर आम जनता सतनाम शब्द में कोई अद्भूत शक्ति तलाशने लग जायेंगी। ऐसा हुआ तो जिस रूढ़िवाद से गुरू घासीदास समाज को बचाना चाहते थें, उसी में जाकर समाज कहीं फिर न फंस जाय। शायद लेखक का यही प्रयास हो। 'ब्रह्म की उत्पत्ति और पुनर्जन्म' पर हम पीछे बता चुके है कि यह किन परिस्थितियों का उपज है। यह तथाकथित ब्राह्मणवादियों के लिये ठीक हो सकता है कि वे यथास्थिति को बनाये रखने में अब तक कामयाब रहे है। इसे ब्राह्मणवाद का विजय माना जायेगा। लेकिन उन लोगों को भी यह सोचना होगा जो इस ब्राह्मणवादी व्यवस्था के शिकार है। यदि वे **ब्रह्म का माया जाल** के चक्कर में मूक दर्शक बने रहे तो उनका अनवरत शोषण होते रहेंगा और यह अमानवीय व्यवस्था चलती रहेगी।

4 . इन्होंने कई जगह गुरू घासीदास एवं उनके परिवार के संबंध में भ्रामक एवं गलत जानकारी दिया है। जैसे सहोद्रा के **सती** होने की बात बार बार उल्लेख किया गया है। सतनामियों में सती प्रथा को महत्व देना तो बहुत दूर की बात है। बल्कि इस प्रथा का डट कर विरोध किया है और सती प्रथा को समाजिक हत्या का दर्जा दिया है।

5 . इनके लेख में सतनामियों को **आर्य वंश** से जोड़ना अत्यंत भ्रामक है। सतनामी मूलतः छत्तीसगढ़ के निवासी ही है जो भारतवर्ष का अभिन्न अंग है। आर्य भारत में बाहर से आये है मूलतः विदेशी है। नारनौल जो संयुक्त पंजाब वर्तमान हरियाणा में स्थित है वह भी भारत का अभिन्न अंग है। नारनौल से कुछ लोग ही छत्तीसगढ़ आये थे। सतनाम पन्थ का अविष्कार एवं प्रचार इस क्षेत्र में पहले बार गुरू

घांसीदास द्वारा किया गया। इससे पहले छत्तीसगढ़ में सतनाम पन्थ होने की चर्चा का कोई प्रमाण नहीं मिलता। कुछ बुद्ध कालिन अवशेष व सन्त कबीर के प्रभाव का संकेत जरूर मिलता है। गुरू घांसीदास से पहले उनके पूर्वज छत्तीसगढ़ में कई पीढ़ी गुजार चुके थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे यहॉ के मूलनिवासी तथा विशुद्ध भरतीय थे। उनके सारे उपदेश व सन्देश छत्तीसगढ़ी भाषा में ही थे। उनके विचारों से प्रभावित हो यहॉ की जनता अपनी जातिवादी संस्कृति को तिलांजली देते हुए उनकी अगुआई में सतनाम पन्थ का निर्माण हुआ है। यदि विदेशी आर्यो का तनिक भी प्रभाव होता तो उनके उपदेशों में संस्कृत का प्रयोग जरूर मिलता।

यह प्रचार का अच्छा तरीका है कि जो भी ज्ञानी-पुरूष हो, कहीं न कहीं किसी ब्राह्मण से उसका संबंध जरूर स्थापति हो जाता है। भले ही उस महान व्यक्ति का दूर दूर तक ब्राह्मणों से कोई संबन्ध न हो। ब्राह्मणों ने हजारों साल से केवल जीभ और कलम ही तो चलाया है। मुफ्त की कमाई आज भी वे खाते है। मनगढ़न्त कहानी गढ़ना कोई इनसे सीखे। वे इस कला में निपुण है। रावण को असुर व राक्षस भी कहते है, जिसका पुतला बनाकर दशहरा के दिन जलाते हैं। उन्हें एक ब्राह्मण पुलत्स्य ऋषि का वंश बताया जाता है।

डा. अम्बेडकर के अनुसार तेरहवीं पहेली 'अहिंसा की पहेली' के अन्तर्गत आर्यो के जीवनगाथा पर प्रकाश डालते हुए कुछ इस प्रकार बताया है ः "क्या आर्य एक **जुआरी** प्रजाति के थे ? हिन्दु चार युगों को कृत, त्रेता, द्वापर और कलि के नाम से जानते हैं । दरअसल ये आर्यो द्वारा जुए में खेले जाने वाले दांव थे। सबसे सौभाग्यशाली दांव कृत कहलाता था और दुर्भाग्यपूर्ण दाव कलि कहलाता था। आर्य जुए में अपने राज्य, यहॉ तक पत्नियॉ भी दाव में लगा देते थे। राजा नल अपना राज्य हार बैठे। पांडव तो इससे भी बढ़कर थे। उन्होंने न केवल अपना राज्य, बल्कि अपने पत्नि द्रौपदी तक दांव में लगा दी और दोनों को हार गये। **आर्यो में मैथुन** के संबंध में स्वच्छन्दता विद्यमान थी। एक समय था जब वे विवाह को स्त्री पुरूष का स्थायी बन्धन नहीं मानते थे। यह महाभारत से स्पष्ट है जहॉ पान्डुपत्नी कुन्ती पाण्डु के कहने पर कि वह किसी अन्य से (साथ सहवास कर) पुत्र प्राप्त करे। वह बताती है कि उसको पहले ही एक पुत्र की प्राप्ति हो चुकी है।"

"ऐसे भी उदाहरण है कि बहन, भाई, पिता, पुत्री और नाना, दादा, पौत्रियों तथा नातिनों के बीच शारीरिक संबंध थे। स्त्रियों में स्वच्छन्दता थी। यह खुली स्वच्छन्दता थी जहॉ कई पुरूष एक स्त्री को भोगते थे .... जिसे ये गणिकाएं कहते थे। आर्यो के स्त्रियों में स्वच्छन्द मान्यता और भी थी। इसके अनुसार एक स्त्री कई पुरूषों से बंधी होती थी और प्रत्येक दिन निर्धारित होता था जो वरांगना कहलाती थी। वेश्यावृत्ति फली फूली हुई थी और सार्वजनिक मैथुन का प्रचलन था।"

"प्राचीन **आर्य मद्यसेवी** थे। मदिरा उनके धार्मिक कृत्यों का अनिवार्य अंग है। वैदिक देवता मदिरा पीते थे, दैवी मदिरा सोम कहलाती थी। दरअसल शराब पीना आर्यो का धार्मिक कर्तव्य था। आर्यो में मदिरापान कोई पाप नहीं बल्कि एक व्यसन था, साथ में मधुपर्क (मांस से बना हुआ व्यंजन)

भी विशेष अवसरों पर सवेन किया जाता था।" गुरू घांसीदास ने इन सब आर्य प्रवृत्तियों का खुलकर विरोध किया। अतः ऐसा कौन सा व्यवहार जो सतनामियों को आर्यपुत्रों के करीब ले जाता है सोचना होगा?

6 . सतनाम के अनुयायियों को जगह- जगह लूट-पाट करने वाले, अतिवादी, विद्रोही व अपराधी प्रवृत्ति तथा समाज व्यवस्था के विपरीत आचरण करने वाला, असभ्य, निम्नस्तरीय बताया गया है। आज प्रजातंत्र है। फिर भी सतनामियों के बारे में ऐसी लेख लिख कर शायद शुक्ला जी अपना जात्याभिमान का शेखी बघारना चाहते हो। यदि ऋग्वेद की बात का शास्वत मान लिया जाय तो दसवें मण्डल के पुरूष सूक्त में ब्राह्मण को ब्रह्मा के मुख से पैदा होना बताया गया है। आज चार मुखवाला कोई ब्रह्मा देखने को नहीं मिलता। यदि आज कोई व्यक्ति अपने आप को जन्म के अधार पर ब्राह्मण कहता है तो शाब्दिक अर्थ में उसे स्पष्ट करना चाहिए कि किस ब्राह्मणी के मुख से पैदा हुआ है। अन्यथा क्या मुख को दूसरे तरह से योनि घोषित करना अति नहीं है। यदि यह सत्य नहीं है तो ऐसा प्रचारित करना स्त्री जाति पर कलंक है । इसी तरह कुन्ती के कान से कर्ण का पैदा होना और अस्वमेध यज्ञ के खीर खाने से बच्चा पैदा होना यह सब क्या दर्शाता है ? क्या ये सब प्राकृतिक नियमों के विरूद्ध नहीं है ? यज्ञ के नाम पर निरीह पशुओं की हत्या, मांस, मदिरा और खुला मैथुन किस सभ्य समाज स्थिति को दर्शाता है, जिसका वर्णन वैदिक ग्रन्थों में भरा पड़ा है। इस विषय पर डा. अम्वेडकर ने विस्तार से लिखा है।

सतनाम आन्दोलन इसी अन्धविश्वास व रूढ़िवाद को समाप्त करने का एक लौकिक अथवा व्यवहारिक मार्ग है। सत्याग्रही कभी विद्राही प्रवृत्ति के नहीं हो सकते। गांधी जी ने भी सत्याग्रह किया था जिसे अंग्रेजों के खिलाफ बगावत कहा गया। सत्याग्रह अधिकार युद्ध है। गुरू घांसीदास जी ने भी भोंसळे ब्राह्मणों के अन्याय अत्याचार और आतंकवाद व अमानवीय व्यवस्था के विरूद्ध सत्याग्रह किया था। इसे निम्नस्तर पर नहीं सोचना चाहिए, बल्कि इस आन्दोलन पर उच्चस्तरीय संवेदना व्यक्त किया जाना चाहिए। सतनाम आन्दोलन मानवीय अधिकार के लिए लड़ा जानेवाला लड़ाई है, जो जनहित में लड़ा गया है। इसमें कोई दो मत नहीं कि ब्राह्मणवादी व्यवस्था के कारण इस देश में मानवीय अीधकारों का हनन हुआ है। अपने जातिय वन्धनों से हट कर इसका निन्दा किया जाना चाहिए, जो प्रत्येक बुद्धिजीवी वर्ग का कर्तब्य बनता है। आज देश को विकृत मानसिकता के बदले बौद्धिक विकाश की आवश्यकता है, न कि लिपा पोती कर गन्दगी को दबाने की, जो एक न एक दिन सड़न और बदबू अवश्य पैदा करेगी।

7. यदि इनके लेख को बारीकी से पढा जाय, तो पूरे पुस्तक में एक बात स्पष्ट झलकता है कि श्री शुक्ला जी गुरू घांसीदास और उनके सतनाम आन्दोलन की कुछ चिकनी चुपड़ी बातों के बीच दिखावटी प्रशंसाओं का पुल जरूर बांधा है। लेकिन उससे कहीं ज्यादा मीठी छुरी से उनके आन्दोलन को भ्रमित करने करने का पूरा- पूरा प्रयास किया है। अतः ऐसे लेखों से सतनाम आन्दोलन को धोखा ही धोखा नजर आता है । इस सामाजिक वायरस का नाम ही ब्राह्मणवाद है।

सतनाम आन्दोलन नियोजित षडयंत्र का शिकार ः

सतनाम आन्दोलन जब गुरू बालकदास के नेतृत्व में तेजी से आगे बढ़ने लगा तो क्षेत्र की सामन्तवादी व ब्राह्मणवादी ताकते घबड़ा गई। उन्होंने सबसे पहले गुरू बालकदास को खत्म करने की योजना बनाई। जब वे उनकी हत्या करने में कामयाब रहे, तब उसके बाद इस आन्दोलन को तितर-बितर करने में लग गये। गुरू बालकदास के मृत्यु के बाद समाज नेतृत्व विहीन हो गया। तत्पश्चात समाज को दिशाहीन बनाने की प्रयास शुरू हो गई। अनेकों साहित्य का निर्माण शुरू हो गया। उनका प्रयास था कि लोग गुरू घांसीदास को भूल जायें।

सतनाम आन्दोलन में भाग लेने वालों को आतंकित किया जाने लगा। चारों ओर भय और अराजकता का वातावरण तैयार किया जाने लगा। अगमदास जी द्वारा सतनाम सागर का निर्माण एक ब्राह्मण के देखरेख में कराया गया। इसमें घांसीदास को रैदास का वंश बताया गया है। चवर पुराण लिख कर सतनाम आन्दोलन के मानने वालों को 'चामुण्ड राय' का वंश बताया गया। इतना ही नही, उसमें आगे यह भी लिखा गया कि ईश्वर के श्रापवश दीनहीन दलित, दास चमार आदि हो जाने की बात लिखी गई है। इसके अलावा रामनामी, सूर्यवंशी, चोगिहा, सत्ताहा खल्हा, पैकिहा, कबीरहा आदि अलग- अलग टुकड़ों में भी समाज को विभक्त करने का प्रयास किया गया। समाज को छोटे- छोटे टुकड़ों मे बांटने की राजनीतिक प्रयास आज भी बदस्तूर जारी है।

रामनामी समूह बनवाने के लिए योजनाबद्ध तरीके से उत्तर प्रदेश के पंडों का सहारा लिया गया। पण्डे को पहले मालखरौदा के पास चारपारा गांव के गौटिया परशुराम के घर भेजा गया। साथ ही दूसरे पण्डे को परशुराम के मितान भटगांव के गौटिया के घर भेजा गया। दोनों को अनजान रखते हुए अलग- अलग उकसा कर पहले परशुराम के माथे में 'राम' लिखवाया। फिर भटगांव वाले गौटिया के माथे में 'राम राम' लिखवा कर, परसुराम के घर भेज दिया। परशुराम ने देखा कि उसके मितान के माथे पर पहले से 'राम राम' लिखा हुआ है। उसने सोचा कि मितान राम को पहले से जानता है। उसने माथे पर राम राम लिखा है। परशुराम ने अपने माथे पर 'एक राम' शव्द को अधूरा समझ उसके अगल बगल में दोनों तरफ राम लिख दिया। इस तरह राम से राम राम और फिर 'राम राम राम' लिखाने का सिलसिला घर परिवार से समाज के बीच इतना बढ़ा कि लोगों ने अपने शरीर के एक इंच पर राम राम लिखा कर अन्जाने में राम भक्त बन गये। बात यहॉ तक बढ़ गई कि नागपुर न्यायालय में सवर्णो द्वारा राम को तौहीन किये जाने का मामला दर्ज हुआ। लेकनि वकील की चालाकि से राम का अर्थ सीता राम न बता कर 'र' कार सूर्य 'म' कार चन्द्रमा और 'अ' कार अग्नि बता कर न्यायालय से जीत हासिल कर लिए। जीत के उन्माद में लोग उत्सव मनाने लगे। महानदी के दोनों छोर गावों में एक साल एक तरफ, तो दूसरे साल दूसरे तरफ रामनामी मेला लगाने की परंपरा चल गई।

जब आजादी के बाद जब शिक्षा का प्रसार हुआ तो लोगों में चेतना आई। अपने शरीर में अंकित राम से उन्हे जाति भेद सूचक व शर्मिन्दगी महशूस होने लगी। लोगों राम भी रास नहीं आया।

उन्हें राम भक्त होना मंहगा पड़ा। तब से अपने माथे व शरीर में 'राम राम' लिखवाना लगभग बन्द कर दिया गया है। बौद्धिक विकास का कार्य तो कहीं नहीं, लेकिन मेला का सिलसिला आज भी बदस्तूर जारी है । इस तरह सतनाम पन्थ को नया मोड़ देने की कोशिस की गई। एक तरफ रामनामी में राम को आगे किया तो उसी तरह दूसरी तरफ सूर्यवंशी समाज में कृष्ण को आगे करके रास लीला के नाटक में उलझा दिया गया। इस तरह सतनाम आन्दोलन को रोकने का कई तरीका अपनाया गया अन्यथा आज छत्तीसगढ़ सतनाम मय होता।

अन्य आपत्ति जनक लेख ः

1 **श्री सौरभ दुबे** द्वारा इंटरनेट के माध्यम से कुछ लेख प्रकाशित हुए है जो अत्यंत निराधार व आपत्ति जनक हैं। इनका लेख ब्राह्मणवादी सोच का उमदा प्रतीक है जो समाज में एकता स्थापित करने के बदले विभेद उत्पन्न करना जानती है। हमेशा इनकी मानसिकता जाति पर टिका रहता है और अपने हर प्रश्न का जवाब वे जातिवाद के आधार पर ढूढ़ना चाहता है। इनसे समझना पड़ेगा कि ये मनुष्य की जाति में कौन सा गुण ढूढ़ना चाहते है। अंग्रेजी मे उपलब्ध उनके लेख के कुछ अंश इस प्रकार हैं।

"Entangled Endeavors: Ethnographic Histories and Untouchable Pasts By Saurabh Dube

1998: COMPARATIVE STUDIES OF SOUTH ASIA, AFRICA AND THE MIDDLE EAST *(formerly* SOUTH ASIA BULLETIN), *Vol. XVIII No. 1 (1998)*

Satnampanth was initiated in the early 19th century by Ghasidas, a farm servant, primarily among the Chamars (etymologically, leather workers) of Chhattisgarh, … Most of its members either owned land or were share-croppers and farm servants

On the one hand, Satnami women earned a measure of autonomy and forms of flexibility to negotiate marriages and men in everyday are-nas. On the other hand, there was a double-edged construction of the agency of Satnami women, marking them with distinct attributes of marginality, an aggressive sexuality and a deviant femininity, and providing a means for their sexual exploitation by upper caste men ."

सौरभ दुबे जाति के आधार पर शायद ब्राह्मण प्रतीत होता है। लेकिन उनका सोच व लेख अत्यंत घटिया किसम का दृष्टिगोचर होता है। यह सच है कि अधिकतर एक ब्राह्मण किसी भी व्यक्ति में उसके गुण ढूढ़ने के बजाय, स्वभावतह उसकी जाति ढूढ़ता है। यह उनके कमजोर मानसिकता और जातिवाचक गुण को प्रदर्शित करता है। क्योंकि ब्राह्मण गुण से ज्यादा, जाति के कारण श्रेष्ट बना हुआ है। ब्राह्मण अपने को आर्यो के संतान बताते हैं। तुलसीदास जी जाति के गुण व धर्म से काफी परिचित नजर आते है जो हिन्दू धर्म की परंपरा रही है। "जे वर्णाधम तेली कुम्हारा, स्वपच किरात कोल कलवारा।" यह हिन्दु समाज व्यवस्था की महानता कही जा सकती है जहॉ ज्ञान से ज्यादा जाति महत्वपूर्ण है कि - ज्ञानवान शूद्र भी, चरित्रहीन महामूर्ख ब्राह्मण के सामने निन्दनीय व अस्तित्वहीन है। "पूजिय विप्र शील गुण हीना, शूद्र न गुण गन ज्ञान प्रवीना।" तुलसीदास जी अपने नीयत को साफ

करते हुए करोड़ों जनता को अधम पापी या नीच घोषित करने में नहीं चुकते। उनके अनुसार "ढोल गंवार शूद्र पशु नारि। ये सब ताड़न के अधिकारी।।" धन्य हो ऐसी समाज व्यवस्था उनके बुद्धि और विवेक को जो सामाज के नेतृत्व कर्ता बने बैठे है। यदि उनके बुद्धि का यही स्तर है तो ऐसे लोगों के नेतृत्व में समाज का कल्याण असंभव है। आज इसी तरह थोथी बड़प्पन के कारण हिन्दु समाज दिन प्रतिदिन गर्त की ओर गिरता जा रहा है। कायस्थ समाज में पैदा हुए स्वामी विवेकानन्द जी ने सही कहा है कि "ब्राह्मण हर क्षेत्र में केवल अपना स्वार्थ देखता है और दूसरों का अहित करता है। कहने को वह भगवान का बड़ा भक्त बना फिरता है लेकिन जिस मन्दिर में चढ़ोतरी नहीं मिलेगा, वहाॅ वह उसके ही बनाये भगवान को भी लात मार कर चला जायेगा।" यही कारण है कि पिछड़े व दलित वर्ग अपमानित होकर धीरे- धीरे हिन्दुत्व से कटते जा रहे हैं।

सौरभ दुबे को ज्ञात होना चाहिए कि गुरू घांसीदास एक उत्तम कृषक थे । उनके खेती की कुशलता को इस तरह व्यक्त किया गया है 'अधरे नागर, अधरे तुतारी, गलियार बैला ळ चलाये' यह उनके कार्य की प्रवीणता को व्यक्त करन का एक तरीका है। वे महाज्ञानी पुरूष थे और ब्राह्मणों की करनी तथा झूठी शान पर शर्मिन्दगी महशूस करते थे। वे ब्राह्मणों को भी देवता से इन्सान बनाना चाहते थे, ताकि यह धरती आम आदमी के लिए रहने लायक हो सके।

सौरभ दुबे की मानसिक स्थिति की दुर्दशा इस बात को इंगत करता है कि औरतो के बारे में उसकी धारणा कैसी है। यह देश और हिन्दु समाज व्यवस्था का दुर्भाग्य कहा जा सकाता है। एक तथा कथित हिन्दू श्री दुबे अपने ही हिन्दू वर्ग के एक दलित महिला के प्रति ऐसी धारणा रखता है कि स्त्रियाॅ चरित्रहीन होती है। अकसर ऐसा पाया गया है कि ऊॅची जाति के हिन्दू पुरूष, अपने ही समुदाय के नीची जाति के हिन्दू महिलाओं को, अपना हवस का शिकार बनाते आये है।

छत्तीसगढ़ में आज से लगभग सत्तर- अस्सी साल पहले तक हिन्दुओं में ऊॅची जाति वाले लोग नीची जाति वाले लोगों के शादी का डोला उठा ले जाते थे। नव बधुओं को अपना हवस का शिकार बनाते थे। अपनी पशु तुल्य वासना का शिकार बनाकर गरीब परिवार की सुन्दर स्त्रियों को जबरन हरण कर लेते थे। अखबार में आज भी शोषण, अन्याय- अत्याचार के ऐसे अनेकों उदाहरणों से भरा पड़ा है। कोलकता, दिल्ली और मुम्बई के चकलाघरों में अन्य जातियों के अलावा विधवा ब्राह्मणियों का भंडार है जो देह व्यापार से अपनी जीवका चलाते है। इसका यह मतळब नहीं कि औरते गलत हैं बल्कि इन्हीं पुरूषों ने उन्हें गलत रास्ते में जाने के लिए मजबूर किया। अतः किसी एक समुदाय को कलंकित करना अशोभनीय है।

आदमी जिस तरह का साहित्य पढ़ता है उसका बुद्धि उसी तरह विकसित होगा। डा. अम्बेडकर के अनुसार वैदिक साहित्य हिंसा, व्यभिचार, जुआ, मांस, मदिरापान आदि से भरा पड़ा है। ज्ञान की बातें बाद में भरी गई जो बुद्ध के आन्दोलन का प्रभाव लगता है। जैसे जय, भारत महाभारत, गीता

और भगवद्‌गीता एक के बाद एक परिवर्तन हुए है। डा. अम्बेडकर ने वैदिक प्रथा पर इतना लिखा है कि उसका एक अंश भी यदि हिन्दु समुदाय सुधार कर ले तो समाज कहॉ से कहॉ पहॅुच जायेगा।

2 इसीतरह का लेख **डा . एम एस तंबोली** द्वारा लिखित "छत्तीसगढ़ में सतनामियों का राजनीतिक एवं सामाजिक जागरण ः **पंडित सुन्दरलाल शर्मा** " शीर्षक लोकाक्षर प्रकाशन विप्र सहकारी मुद्रणालय मर्यादित शिवमार्ग कुदुदण्ड बिलासपुर द्वारा प्रकाशित लेख के पृष्ट **53- 54** में कुछ इस प्रकार बताया गया है कि "पंडित सुन्दरलाल शर्मा ही सतनामी समाज के मूल उद्वारक रहे है। उन्होंने सतनामियों को 'हरिजन' बनाकर सवर्ण समाज का अधिकार दिलाने हेतु मन्दिर प्रवेश का आन्दोलन प्रारम्भ किया। सवर्णो के विरोध के बावजूद राजमहन्त श्री अम्जोरदास और गजाधर साव मुंगेली के सहयेग से सन् **1917** मे सतनामियों की एक सभा आायोजित किया और सन् **1924** में सतनामियों को यज्ञोपवीत या जनेऊ धारण करने का अधिकार इन्होंने दिलाया। .... अछूतों या हरिजनों की स्थिति का लाभ उठाकर ईसाई-मिशनरियॉ उन्हें धर्म परिवर्तन के लिए प्रेरित करती थी। इनके चंगुल से बचाने के लिए (हिन्दुओं के लिए) यह आवश्यक था कि हरिजनों को बराबर का दर्जा देने के लिए कोई सकिय कदम उठाया जाय।.....शर्मा जी ने सतनामियों के गुरूओं से सम्पर्क स्थापित किया। उन्होंने सतनामियों को जनेऊ प्रदान कर यह घोषित किया कि उन्हें सवर्णो की भॉति सामाजिक व धार्मिक अधिकार हैं।... किन्तु उन्होंने (शर्मा जी ने) अपमानों की परवाह नहीं की अपने सिद्धान्त पर अडिग थे। .. इसके पूर्व वे मांस खाते थे। शराब भी पीते थे, गाय भी काटते थे। किन्तु यह जनेऊ का प्रभाव कहिए...... दुर्गुणों का परित्याग करना प्रारंभ किया।"

यह लेख अत्यंत भ्रामक ही नहीं दुर्भावनापूर्ण है। जहॉ तक जनेऊ धारण करने का सवाल है, तो यह कार्य गुरू बालकदास ने प्रारंभ किया था। तब पंडित सुन्दरलाल शर्मा शायद पैदा भी नहीं हुए थे। यह सच है कि शर्मा जी ने सतनामियों का हिन्दुकरण अवश्य किया है। हिन्दू जातिवादी है जबकि सतनामी एक जातिविहीन पन्थ था। इसमें अनेकों जाति के लोग अपने मूल हिन्दु -जातियों को छोड़ कर इस पन्थ में शामिल हुए थे। वास्तव में सतनामी कोई जाति नहीं वरन् ब्राह्मणवाद के खिलाफ एक क्रान्तिकारी संघर्ष रहा है।

सतनामियों का कोई एक धन्धा नहीं था। वे सब कुशल कारीगर एवं उन्नत किसान वर्ग थे, जिसकी प्रेरणा उन्हें गुरू घांसीदास से मिली थी। शर्मा जी तो मुफ्त में सतनामियों का नेता बन गये। उन्होंने सतनामियों को उनके माता पिता के रहते हुए हरिजन बनाया। हरिजन देवदासी प्रथा से उत्पन्न बच्चे, जिसके बाप का अता पता नहीं को कहा जाता है। हरिजन यदि उत्तम शब्द है तो ब्राह्मण से बड़ा कोई हरिजन नहीं हो सकता क्योंकि मन्दिरों में 'हरि' के सबसे करीब रहने, उठने, बैठने वाला ब्राह्मण पुरोहित ही होता है। सुन्दरलाल शर्मा को बड़ा हरिजन होना चाहिए जिन्होंने अपनी बिरादरी में सतनामियों को शामिल किया। लेकिन यदि हरि के सबसे पास रहने वाला हरिजन नहीं होता तो अछूत जो 'हरि' के पास तक पहॅुच भी नहीं पाते उन्हे हरिजन होने का प्रश्न ही नहीं उठता। काश् शर्मा जी सतनामियों को वास्तव में सवर्णो के बराबर का अधिकार दिलाये होते तो डा. अम्बेडकर के जगह आज

उनकी पूजा होती। सतनामियों में संस्कृत के मन्त्रोच्चारण करने वाले विद्वान भरे पड़े है, ऐसे में कई सतनामी विद्वान मन्दिरों में पुरोहित होते। इसके अलावा ब्राह्मणों के साथ सतनामियों का सामाजिक लेन-देन के अलावा रोटी बेटी चलता और मुगेली काण्ड नहीं होता। ऐसे हैं सतनामियों के सवर्ण हरिजन उद्धारक।

ळेख से पता चलता है कि सतनामियों को दिग्भ्रमित करनें शर्मा जी का काफी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। गुरू घांसीदास ने कहा है 'मन्दिरवा मा का करे जाबो' अतः सतनामियों को मन्दिर प्रवेश आन्दोलन के लिए उकसा कर गुरू के वाणी को गलत साबित करने में निश्चय ही सुन्दरलाल जी का एक सुन्दर चाल नजर आता है। यह हो सकता है सतनामी समाज अज्ञानता के कारण उन्हीं के पीछे हो लिए हों। जो ब्यक्ति जिस काम विरोध करे, उससे वही काम करवा लेना इन पंडितों की चतुराई है। जिनको गुरू ने 'मन्दिर जाने के लिए मना' किया उनको शर्मा जी ने 'मन्दिर प्रवेश' करा दिया। गुरू ने समाज को 'पत्थर- पूजा के लिए मना' किया उनको मन्दिर ले जा कर 'पत्थर की मूरत को पूजा करवा दिया' यह कम चालाकी नहीं है।

स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार "ब्राह्मणों को अपना आय के श्रोत एवं मुफ्तखोरी का हर पल ख्याल रहता है। यदि बहुसंख्यक शूद्र समाज में पूजा- पष्ट बन्द हो जाये तो लाखों ब्राह्मण भूखे मर जायेंगे। वे मन्दिरों में भगवान की पूजा इसलिए नहीं करते कि उनको भगवान के प्रति श्रद्धा है बल्कि वे इसलिए करते हैं कि बिना किसी मेहनत के, दूसरों को बेवकूफ बनाकर, उनके पेट पालने का उमदा धन्धा है। कोई भी पुरोहित उस मन्दिर में नहीं बैठेगा, जहॉ चढ़ोतरी नहीं होता है। चाहे वह मूरत कितना भी महत्वशाली क्यों न हो। उस पत्थर के देवता के पीछे जहॉ कोई आमदनी नहीं होता वहॉ ये पुरोहित अपना एक पल समय नहीं गंवायेगा बल्कि उस मूरत को "जो भृगु मारी लात" की तरह लात मार कर दूसरे ही दिन चला जायेगा।" एक तरफ यही लोग सतनामियों अछूत कहते रहे, वहीं दूसरे तरफ उनके घरों सत्यनारायण कथा- पाठ, जन्म- मृत्यु, विवाह आदि अवसरों पर पुरोहिती करने में ब्राह्मणों ने कोई चूक नहीं किया और सतनामियों को अपने जाल में फंसाकर अपनी आमदनी में जबरदस्त इजाफा किया। सतनामियों का एक तरफ हिन्दुकरण किया वहीं दूसरे तरफ अछूत की श्रेणी में भी ढकेल दिया।

शर्मा जी से सम्बन्धित इस ळेख में 'अइसन छत्तीसगढ़ हमार' में छत्तीसगढ़ का जिस तरह वर्णन मिलता है वह भी गौर करने योग्य है कि हम छत्तीसगढ़ के लोग कितने बिखरे हुए है ः

छत्तीसगढ़ के छत्तीस भासा, छत्तीस जात हमार।
छत्तीस ढंग के रहना बसना, छत्तीस ढंग के प्यार।।
छत्तीस राजा सदा रहिन, ए छत्तीसगढ़ के माटी मा।
अलग अलग जात धरम, पर प्यार सबके छाती मा।।
पग पग मा इहॉ देवता धामी, रस्ता चलत करथन सलामी ।
बासी बोरे इहां के कहानी, नइए एमा कखरो गुलामी।।

सचमुच शर्मा जी के जीवन लिखते समय जात- पांत का जिकर होना स्वाभाविक है, क्योंकि छत्तीसगढ़ अकसर ब्राह्मणवाद का साया से ग्रस्त रहा है। ब्राह्मणवाद का आधार ही जातिवाद है। यदि जाति नष्ट हो जाती है तो ब्राह्मणवाद अपने आप नष्ट हो जायेगा, क्योंकि इसको खाद और पानी जातिवाद से ही मिलती है। गुरू घांसीदास ने इसी जातिवादी व्यवस्था को नष्ट कर जाति- विहीन 'सतनाम पन्थ' बनाने का प्रयास किया था। बाद में उनके अनुयायी इस आन्दोलन को आगे नही बढ़ा पाये और आज इसे भी ब्राह्मणवाद का साया ने सूंघ लिया है। वे वही कर रहे है जो ब्राह्मणवाद चाहता है।

श्री नन्दकुमार बघेल के अनुसार खासकर पिछड़ी जातियॉ सबसे ज्यादा इस कुव्यवस्था से जकड़ी हुई है। इस सामाजिक शोषण का शिकार है। वे आज भी छटपटा रहे हैं। श्री खूबचन्द बघेल जी के बाद इनका प्रयास अत्यंत सराहनीय है। यहॉ पर सन्त कबीरदास का महान क्रान्तिकारी आन्दोलन, आज ब्राह्मणवाद के चंगुल में फंसा हुआ है। ये लोग केवल चौका- चन्दन तक सीमित हो सामाजिक क्रान्ति के पथ से भटक कर दिशा- हीन हो गये है।

ब्राह्मणवाद की साया एक बरगद की पेड़ की तरह है, जिसके छाया तले कोई भी दूसरा पेड़ नहीं पनप सकता, केवल बरगद ही बरगद नजर आयेगा। सतनाम आन्दोलन एक क्रान्ति है तो ब्राह्मणवाद प्रतिक्रान्ति है। वर्तमान स्थिति इसी प्रतिक्रान्ति उसका प्रभाव है। प्रतिक्रान्ति से अकसर क्रान्ति को धूमिल करने का प्रयास होता है। लेकिन बादल छटते ही क्रान्ति के किरणे पुनः उन्हें भेद कर चारों ओर प्रकाश फैला देती है और उजाला ही उजाला नजर आने लगता है।